क्या शिक्षा में समानता बीता सरोकार बन चुका है?

साधना सक्सेना

केंद्र सरकार द्वारा शैक्षिक रूप से पिछड़े प्रखण्डों में स्कूल छोड़ देने वाली बालिकाओं के लिए कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के नाम से आवासीय स्कूल स्थापित करने की नीति की शिक्षाविदों ने प्रशंसा की है। यह आलेख समता व न्याय के परिप्रेक्ष्य से इस योजना व उसके क्रियान्वयन की विवेचना करता है और सवाल करता है कि क्या इस तरह की विशेष स्कूली व्यवस्थाएं समानता के सिद्धांत को चोट नहीं पहुंचातीं?

आजादी के बाद के युग में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 द्वारा बालिकाओं और स्त्रियों की शिक्षा पर काफी ध्यान दिया गया, जो जरूरी भी था (पुनाचा तथा गोपाल 2004; राष्ट्रीय फोकस समूह 2007 बी)। स्कूलों में लगातार नजर आने वाली बालिकाओं की असमान भागीदारी, भारत में बढ़ती नारीवादी चेतना तथा आंदोलनों का दबाव और अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं व कटिबद्धताओं ने राष्ट्रीय तथा राज्य सरकारों को ऐसी पूरक योजनाएं बनाने पर बाध्य किया जिनसे शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी बढ़े। इनमें से कुछ योजनाएं तो सभी बालिकाओं के लिए बनीं, तो कुछ केवल उन बालिकाओं के लिए जो वंचित समुदायों से हैं। ऐसी योजनाएं समान शैक्षिक अवसर तथा योग्यता के उन सिद्धान्तों के विपरीत लग सकती हैं जिनकी पुष्टि 1966 के कोठारी आयोग तथा 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने की थी। परन्तु क्योंकि, ''सामाजिक वर्ग बाजार में समान हैसियत से प्रवेश नहीं करते'' (हैल्से व अन्य 1997 : 257), महज समान शैक्षिक अवसर समानता सुनिश्चित नहीं करते। इसलिए यह जरूरी लगता है कि समता व न्याय सुनिश्चित करना हो तो पूरक नीतिगत निर्णय भी लिए जाएं। ऐसे निर्णय ''उन गहरे पैठी असमानताओं तथा अन्यायों की चेतना में स्थित होते हैं... जो दमन के इतिहास से उपजे हों'' (वेलास्कर, 2010 : 63)। यह बात सामान्यतः स्वीकारी जाती है कि भारत जैसे समाज में, जो पितृसत्तात्मक होने के साथ जाति, वर्ग, धर्म तथा नृजातीय आधार पर बंटा हो, बालिकाओं को, खासतौर से अधीनस्थ समूहों की बालिकाओं को, अगर औपचारिक शिक्षा में शामिल करना हो तो पूरक उपायों की जरूरत होगी ही।

फिलहाल जो पूरक योजनाएं हैं उनमें प्रारंभिक स्तर तक की सभी बालिकाओं को निःशुल्क गणवेश तथा पाठ्यपुस्तकें बांटना, सैकेण्डरी तथा सीनियर सैकेण्डरी स्तर तक की छात्राओं को योग्यता के आधार पर छात्रवृत्ति देना और अनुसूचित जाति व जनजाति की बालिकाओं को विशेष छात्रवृत्ति देना शामिल है। इसके अतिरिक्त प्रारंभिक स्तर तक के सभी बच्चों के लिए मध्याह्न भोजन व निःशुल्क शिक्षा की योजनाएं भी हैं। मध्य प्रदेश तथा बिहार में अनुसूचित जाति तथा जनजाति की बालिकाओं को साइकिलें भी दी जा रही हैं, जिन्हें आगे की पढ़ाई के लिए दूर तक जाना पड़ता है।

दिल्ली सरकार ने गरीबी रेखा के नीचे आने वाले परिवारों की लड़कियों के लिए 'लाडली योजना' नाम से एक सशर्त 'कैश ट्रांसफर' योजना भी प्रारंभ की है। इसके तहत बालिका

के बैंक खाते में एक तयशुदा राशि प्रति वर्ष जमा कर दी जाती है। यह योजना बालिकाओं को उच्च शिक्षा की दिशा में प्रेरित करने के लिए बनाई गई है। योजना के अनुसार बैंक में जमा राशि बालिका को पढ़ाई पूरी करने और 18 वर्ष की हो जाने पर मिलेगी। इन योजनाओं के अलावा राज्य सरकारें अनुसूचित जाति तथा जनजाति की बालिकाओं तथा बालकों के लिए छात्रावास भी चलाती हैं।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय शैक्षिक रूप से पिछड़े प्रखण्डों में रहने वाली अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों तथा गरीबी रेखा के नीचे स्थित समुदायों की बालिकाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध करवाने के मकसद से स्थापित किए गए हैं। यह केंद्र सरकार की एक महत्त्वपूर्ण योजना है तथा शिक्षाविदों ने अमूमन इसकी प्रशंसा की है। योजना 2004 में प्रारंभ की गई और अब तक 3,000 से भी अधिक प्रखण्डों में लागू की जा चुकी है। ऐसी योजना की आवश्यकता का औचित्य उपरोक्त समुदायों की बालिकाओं की शिक्षा में भागीदारी का अभाव बताया जाता है, जो महिला साक्षरता की राष्ट्रीय औसत से कम दर, स्कूल छोड़ने की ऊंची दर तथा स्त्री व पुरुष साक्षरता दर में भारी अंतर में परिलक्षित होता है। परन्तु यह योजना केवल शैक्षिक रूप से पिछड़े प्रखण्डों तथा वहां भी प्रति ब्लॉक केवल 100 बालिकाओं तक सीमित है। इससे कई सरोकार उभरते हैं। ये सरोकार राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक रूप से पिछड़े प्रखण्डों में बालिकाओं की कम भागीदारी के व्यापक मुद्दों पर इस योजना के प्रभाव से संबंधित हैं।

नीति का गठन तथा उसका रूपान्तरण

उपरोक्त सरकारी नीतियों का विश्लेषण दो दृष्टिकोणों से किया जा सकता है : क्रियान्वयन के दृष्टिकोण से, जो जमीनी स्तर पर नीति को लागू करने से जुड़ा है। दूसरा, व्यापक संदर्भ में स्वयं नीति को ही जांचना। नीति के गठन और जमीनी स्तर पर उसके वास्तविक रूपान्तरण में जो अंतर है, उसे बॉल (मेनड्ेस तथा मार्कोन्डेस, 2009) ''शब्द' से ''कर्म'' या व्यवहार में उतारने के रूप में वर्णित करते हैं। यह नीति विश्लेषण का एक दूसरा ही स्तर है। इसके विपरीत वेलास्कर (2010) नीतिगत शोध के क्षेत्र की कमियों को रेखांकित करती हैं, जो अमूमन नीति के क्रियान्वयन की जांच तथा नीति निर्माताओं व वित्त-दाताओं द्वारा या कहें सरकार द्वारा, निर्धारित उद्देश्यों तथा लक्ष्यों पर नीति के प्रभावों को मापने तक सीमित रहता है। भारत में नीति संबंधी परंपरागत शोध बिरले ही नीति में की गई समस्या की व्याख्या, राज्य की प्रकृति, राजनैतिक संदर्भ और नीतिगत ढांचों से जूझते हैं। वेलास्कर तर्क करती हैं कि नीति संबंधी विमर्श तथा प्रक्रियाएं गहन रूप से राजनीतिक परिघटनाएं होती हैं। ''अतः नीति का उत्पादन विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भों के सामाजिक ढांचे के सत्ता संबंधों की गत्यात्मकता में स्थित होना चाहिए'' (ऑलसन व अन्य, 2004), जिन्हें वेलास्कर ने 2010: 60 में उद्धृत किया है)। यह आलेख कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना की, जो एक महत्त्वपूर्ण पूरक नीतिगत हस्तक्षेप है, उपरोक्त दोनों ही परिप्रेक्ष्यों से समीक्षा करता है। ये परिप्रेक्ष्य हैं - नीति का रूपान्तरण तथा व्यापक शैक्षिक संदर्भ में नीति स्वयं का आलोचनात्मक विवेचन।

आलेख का पहला भाग नीति के रूपान्तरण के विषय में अंतर्दृष्टि देता है जो भारत सरकार द्वारा प्रायोजित राष्ट्रीय मूल्यांकन रिपोर्ट (सर्व शिक्षा अभियान, 2007, 2008बी), राज्य स्तर पर यूनिसेफ द्वारा किया गया अध्ययन (2010), कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के प्रत्यक्ष अवलोकनों तथा इस विषय पर उपलब्ध अन्य लेखन पर आधारित है। इसमें आधारभूत संरचना व मानवीय संसाधन जैसी अन्य सुविधाओं, छात्राओं के चयन की प्रक्रिया, उनके सकारात्मक अनुभवों, अलगावों तथा मध्यवर्गीय कार्यकर्ताओं व बालिकाओं के निजी जीवन के अंतरों के कारण विश्वदृष्टि संबंधी टकरावों, सिखाने तथा सीखने की गुणवत्ता, आवासीय शिक्षकों की कार्य स्थितियों, उनकी स्वायत्तता संबंधी मुद्दों तथा स्थानीय अधिकारियों से उनके संबंधों आदि की समीक्षा शामिल है। योजना में गुणवत्ता पर दिए जाने वाले बल के संदर्भ में यह समीक्षा कक्षा में अपनाए गए तौर-तरीकों की गहन समझ की आवश्यकता, शिक्षकों की अकादमिक तैयारी तथा शिक्षण परिणामों को गहराई से समझने की जरूरत को भी रेखांकित करती है।

आलेख का दूसरा भाग समान शैक्षिक अवसरों तथा वास्तविक समानता की बहसों के संदर्भ में इस नीति की समीक्षा करता है। यह भाग शिक्षा तथा सामाजिक बदलाव के बीच के द्वंद्वात्मक संबंध पर मौजूदा बहसों का संक्षेप में उल्लेख करता है और तर्क करता है कि ऐसी विशिष्ट योजनाएं समान शैक्षिक अवसर के सिद्धान्त के त्यागे जाने की पुष्टि करती हैं और इस प्रकार उनके न्याय संबंधी उद्देश्यों को कमजोर बनाती हैं। इस हिस्से में निम्नलिखित

साधना सक्सेना

दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में पढ़ाती हैं। किशोर भारती संस्था में कार्य करते हुए विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें बनाने का लम्बा अनुभव है।

प्रश्नों पर चिंतन की चेष्टा भी की गई है : विगत पांच-छह दशकों में नीतिगत बदलावों की प्रकृति क्या रही है? - समान शैक्षिक अवसर के नीतिगत सिद्धान्त से तथा पूरक उपायों हटकर कुछ के लिए विशेष योजनाओं तक? कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय जैसी न्यूनतम नीतिगत हस्तक्षेपों पर यह बहस क्यों नहीं उभरी है कि क्या सरकार सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया करवाने के अपने घोषित तथा बहु-प्रचारित लक्ष्य से कन्नी काट रही है? सभी राजकीय विद्यालयों में, जहां अधिकांश बालिकाएं पढ़ती हैं, नवोदय विद्यालयों, मॉडल स्कूलों या कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों जैसी संसाधन और सुविधाएं क्यों नहीं हैं? सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि ऐसी विशेष योजनाओं पर ध्यान केंद्रित करना और उनकी दृश्यता क्या अधिकांश सरकारी स्कूलों की भयानक स्थिति पर पर्दा नहीं डालती?

1. नीति का क्रियान्वयन

दूरस्थ इलाकों में रहने वाले ग्रामीण विद्यार्थियों की शिक्षा तक असमान पहुंच की समस्या का समाधान हमेशा से आवासीय स्कूल तथा छात्रावास खोलने की नीति को माना जाता रहा है। राज्य आदिवासी तथा समाज कल्याण (अब सामाजिक न्याय) विभाग अनुसूचित जाति तथा जनजाति के बच्चों के लिए आश्रम शालाएं (आवासीय स्कूल) तथा छात्रावास चलाते रहे हैं। इन शालाओं तथा छात्रावासों की स्थितियों और क्रियाकलापों के विषय में विभिन्न अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग, समिति रिपोर्टें और शोध अध्ययन आवश्यक अंतर्दृष्टि उपलब्ध करवाते रहे हैं। आश्रम शालाओं के विस्तृत अवलोकन वहां की भयावह जीवन परिस्थितियों, घटिया प्रबंधन, अकुशलता, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार तथा घटिया शैक्षिक स्तरों को स्पष्ट करते हैं। छात्रावासों में भी स्थितियां ऐसी ही हैं। साथ ही वहां भीड़भाड़, अस्वच्छता, घटिया भोजन, रोग तथा कुपोषण की व्यापकता तथा चिकित्सकीय सुविधाओं के अभाव जैसी समस्याएं भी हैं (राष्ट्रीय फोकस समूह 2007ए)।

यूनिसेफ (2010) की संक्षिप्त रिपोर्ट जो मध्य प्रदेश में बालिका शिक्षा की स्थिति के अध्ययन पर आधारित है, यादृच्छिक रूप से चुने गए सात अनुसूचित जाति/जनजाति बालिका छात्रावासों में रहने की सम्माननीय व्यवस्था तक के अभाव को दर्ज करती है। उपरोक्त अध्ययन की विस्तृत रिपोर्ट में सक्सेना व अन्य (2009) यह स्पष्ट करते हैं कि अध्ययन में शामिल किए गए सातों छात्रावासों में भीड़भाड़, टूटी-फूटी इमारतों, साफ-सफाई का पूर्ण अभाव, सुरक्षा और चिकित्सकीय देखभाल के अभाव की गंभीर समस्याएं थीं। खाना पकाने की समुचित सुविधाएं नहीं थीं और खाने की गुणवत्ता घटिया तथा उसकी मात्रा दयनीय रूप से अपर्याप्त थी। छात्रावासों के कार्मिकों को बेहद कम वेतन मिलता था और वे खाद्य सामग्री की चोरी करते थे, जिसके चलते भोजन की गुणवत्ता तथा अन्य सुविधाओं में और भी गिरावट आती थी। लगभग सभी सातों छात्रावासों में एक या दो कमरों में 50 से 100 बालिकाएं रहती थीं। उनकी छतें टपकतीं थीं, उनमें केवल दो या तीन स्नानघर और शौचालय थे, जिनमें न पानी था न बिजली। उदाहरण के बतौर, एक छात्रावास के विषय में अध्ययन में कहा गया (सक्सेना व अन्य 2009 : 158) :

> भवन की छत चूती है और बरसात में लड़कियों के बचने के लिए केवल टारपोलीन है। बरसाती पानी को इकट्ठा करने के लिए जगह-जगह बाल्टियां रखी हुई थीं। 100 लड़कियों के लिए केवल एक स्नानघर है। छात्रावास की कोई बाहरी दीवार नहीं है इसलिए अक्सर नशे में धुत पुरुष छात्रावास में घुसकर लड़कियों को उत्पीड़ित करते हैं और पैसों की मांग करते हैं।

एक दूसरे छात्रावास में (सक्सेना व अन्य 2009 : 158) :

> 77 लड़कियों के लिए केवल एक कमरा था। कमरा अंधेरा और गंदा था, जिसमें लड़कियों का सामान, गद्दे, तकिए और चादर बिखरी थीं। कमरे में एक बल्ब और एक पंखा था... ये बालिकाएं 7 गांवों से थीं जो 3 से 7 किमी. की दूरी पर स्थित थे। सभी गरीबी रेखा के नीचे स्थित परिवारों से थीं, जो अनुसूचित जाति/जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग की श्रेणियों की थीं... वहां केवल दो शौचालय काम करते थे और दो स्नानघर थे...

विडंबना यह है कि कई रिपोर्टों तथा अध्ययनों ने यह भी दर्ज किया है कि इन स्कूलों की कमी और दूरी के कारण छात्रावासों की मांग काफी है। परन्तु छात्रावासों की भयावह परिस्थितियां सीखने के वातावरण के प्रतिकूल हैं, अतः वे उनके उद्देश्य को ही विफल कर डालती हैं।

इस पृष्ठभूमि में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय, जो भारत सरकार की योजना है, संभवतः एक ताजी और स्वागत योग्य योजना है। हालांकि यह योजना 2004 में प्रारंभ हुई थी, 2007 में इसे सर्व शिक्षा अभियान में एक पृथक अंग की तरह शामिल कर लिया गया। यह योजना वंचित पृष्ठभूमि से आने वाली ग्रामीण बालिकाओं को मुख्यधारा से जुड़ने का दूसरा मौका उपलब्ध करवाने का दावा करती है। खासकर उन बालिकाओं को जो

पांचवीं से आगे नहीं पढ़ पाईं और जिन्हें औपचारिक शिक्षा में वापस लौटने के लिए अतिरिक्त अकादमिक मदद की जरूरत है। इस योजना के तहत बालिकाओं को छठी कक्षा में नामांकित किया जाता है और उस कक्षा की अकादमिक आवश्यकता तक पहुंचने के लिए 'सेतु पाठ्यक्रम' (ब्रिज कोर्सेस) उपलब्ध करवाए जाते हैं। केंद्र सरकार कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की स्थापना करने व उन्हें चलाने के सभी खर्चे वहन करती है, जिसमें आठवीं कक्षा तक की छात्राओं का आवासीय व शैक्षणिक व्यय शामिल है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय के तीन मॉडल हैं : 100 बालिकाओं के लिए छात्रावास तथा स्कूल (मॉडल 1), 50 बालिकाओं के लिए छात्रावास व स्कूल (मॉडल 2) तथा 50 बालिकाओं के लिए छात्रावास जहां पास की माध्यमिक शाला में पढ़ाई की व्यवस्था हो (मॉडल 3)। इस योजना में प्रत्येक प्रखण्ड के लिए एक-एक कस्तूरबा बालिका शाला का प्रावधान है। प्रखण्डों का चयन शैक्षिक सूचकांकों के आधार पर होता है, जैसे महिला साक्षरता दर का राष्ट्रीय महिला साक्षरता दर से कम साक्षरता होना तथा बालिकाओं के स्कूल छोड़ने की दर का प्रतिकूल होना।

इस योजना में भवन निर्माण व अन्य मूलभूत संरचनाओं, कक्षाओं के लिए फर्नीचर, कार्यालय, पुस्तकालय, रिहायशी कमरों का सामान जिसमें तकिए, गद्दे, चादरें, कम्बल, रसोई के बर्तन आदि, भण्डारण के बर्तन, सभी आवासियों के लिए कपड़े, स्टेशनरी तथा पुस्तकों आदि के लिए सरकार धन का प्रावधान करती है। सामान्य सरकारी स्कूलों तथा अनुसूचित जाति/जनजाति के छात्रावासों की तुलना में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय कहीं बेहतर हैं। हालांकि वे नवोदय विद्यालयों के समान नहीं हैं। कुमार तथा गुप्ता (2008) नवोदय विद्यालयों की तुलना में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों को कम बजट के प्रावधान की आलोचना करते हैं। साथ ही पाठ्यचर्या, विषयवस्तु, शिक्षण पद्धति तथा इन शालाओं में नियुक्त शिक्षकों के दर्जे के बारे में भी चिंता अभिव्यक्त करते हैं।

आधारभूत संरचना व अन्य संसाधन

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना का मूल्यांकन करवाया (सर्व शिक्षा अभियान 2007, 2008बी)। यह मूल्यांकन रिपोर्ट 12 राज्यों में किए गए दौरों पर आधारित है और काफी जानकारी देती है। हालांकि ये प्रतिवेदन प्रशंसात्मक प्रतीत होते हैं और नीति पर विचार किए बिना केवल क्रियान्वयन पक्ष पर ही टिप्पणी करते हैं। फिर भी वे इन संस्थाओं के कार्यात्मक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं और जमीनी स्तर पर उनमें मौजूद असमानता को रेखांकित भी करते हैं। इन रिपोर्टों में संसाधनों, सुविधाओं तथा संरचनाओं संबंधी मुद्दे अर्थात् जीवन स्थितियां, सीखने के माहौल पर भी जानकारी दर्ज हैं, जो बेहतरीन से लेकर भयावह तक हैं। उदाहरण के लिए, ऐसे भी कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय हैं जहां सोने, खाना पकाने, पढ़ाने के लिए अपर्याप्त स्थान है। अध्ययन यह दर्ज करता है कि कई बार एक ही कमरे में तीन कक्षाएं चलाई जाती हैं। लड़कियां फर्श पर सोती हैं क्योंकि या तो पलंग नहीं हैं या उन्हें रख पाने के स्थान का अभाव है। स्नानघर, शौचालय तथा पानी का अभाव पंजाब के सिवाय लगभग सभी कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों में पाया गया।

इन प्रतिवेदनों में बालिकाओं के मन में अलगाव का भाव, घर की याद सताना, मानसिक टूटन, मनोविक्षिप्तता तथा एकाकीपन का भी उल्लेख है। स्वास्थ्य के मसले पर भी ये प्रतिवेदन चिंता पैदा करते हैं। दौरों के दौरान कई बालिकाओं में खाज जैसे चर्म रोग, पेट व अंतड़ियों के रोग पाए गए जो स्थान व पानी के अभाव, अस्वच्छ परिस्थितियां तथा पोषक भोजन की कमी से होते हैं। स्थिति इसलिए और भी विकट बनती है क्योंकि अधिकतर कस्तूरबा विद्यालयों की चिकित्सकीय व सुरक्षा सुविधाओं की पहुंच ही नहीं है।

इन्हीं प्रतिवेदनों में वॉर्डन के पास स्वायत्ता न होने, रुटीन शिक्षण पद्धतियों के उपयोग करने, अप्रशिक्षित या अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों के होने तथा सिलाई-कढ़ाई, अचार डालने जैसी पाठ्येत्तर गतिविधियों द्वारा लैंगिक रूढ़छवियों को पुख्ता करने का उल्लेख भी मिलता है। कुछ प्रतिवेदनों में ऐसे प्रमाणों को भी दर्ज किया गया है कि कुछ विद्यालयों में लैंगिक रूढ़छवियों तथा भोजन के पहले मंत्रोचार द्वारा हिन्दुत्ववादी विचारों को पुख्ता करते हैं।

मध्यप्रदेश यूनिसेफ रिपोर्ट (सक्सेना व अन्य 2009) यादृच्छिक रूप से पांच जिलों से चुने गए पांच कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के अनुभवों को दर्ज करती है। राज्य सरकार के संचालन निर्देश 2007-08[1] में मध्य प्रदेश में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की स्थापना की पूर्व शर्तों का उल्लेख है। इनमें चिकित्सा सुविधा की निकट पहुंच, सभी आवासियों के लिए मय बिजली के आवास की पर्याप्त सुविधाएं तथा छात्रावास कार्मिकों के लिए पृथक सुविधाओं, बालिकाओं के लिए कम से कम चार स्नानघर तथा चार शौचालय, पानी भण्डारण की टंकी, पानी उठाने के लिए पम्प, पुस्तकालय, फोन, कम्प्यूटरों, इंटरनेट की सुविधा, प्रयोगशाला व खेलकूद सामग्री तथा प्रत्येक बालिका के लिए पलंग, गद्दा, चद्दर, कम्बल, कपड़े, ऊनी कपड़े, तौलिए, अंदरूनी कपड़े, चप्पल, कंघी,

स्कूली बस्ता, किताबें, कॉपी-पेन्सिल इत्यादि उपलब्ध करवाने का निर्देश है।

इसके बावजूद जो बात सदमा पहुंचाती है वह यह है कि कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों में रहने और सीखने-सिखाने का वातावरण राज्य सरकार द्वारा संचालित अनुसूचित जाति/जनजाति के छात्रावासों से अधिक भिन्न नहीं था। कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय या तो पंचायत भवनों में या टूटे दरवाजे, टपकती छत वाले किसी टूटे-फूटे स्कूल भवन में या किसी किराए पर लिए गए गंदे-अंधेरे कमरों में स्थित थे। इन सभी भवनों में हवा-रोशनी का, समुचित साफ-सफाई तथा सुरक्षाकर्मियों का अभाव था। दिशा-निर्देशों के विपरीत किसी में भी नियमित पानी व बिजली की सुविधा नहीं थी; न ही चिकित्सा सुविधा तक पहुंच थी। पानी, शौचालय, स्नानघर जैसी बुनियादी सुविधाओं के अभाव के चलते बालिकाएं केवल कभी-कभार नहा पाती थीं या फिर चार-पांच बालिकाएं एक साथ नहाने पर बाध्य होती थीं। कहीं-कहीं शौच के लिए उन्हें खुले नाले का उपयोग करना पड़ता था। सभी कस्तूरबा विद्यालयों में 50 से 100 लड़कियां दो या तीन छोटे कमरों में रह रही थीं। उनके सामान व पढ़ाई-लिखाई की चीजों को रखने की कोई व्यवस्था नहीं थी। सामग्री या तो इधर-उधर बिखरी थी या फिर एक ही मेज पर ढेरियों में रखी मिली। स्थानाभाव के कारण सभी विद्यालयों में वे ही कमरे खाने, पढ़ने और सोने के लिए काम में लिए जा रहे थे। पलंगों की संख्या या तो कम थी, जिसके चलते दो-तीन लड़कियां एक पर सोने को बाध्य थीं या फिर पलंग थे ही नहीं, इसलिए बालिकाएं फर्श पर सोने को बाध्य थीं। दो कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के विषय में लिखी गई रिपोर्ट का निम्न उद्धृत अंश शायद सभी आवासिनों की नियति को स्पष्ट करता है (सक्सेना व अन्य, 2009 : 154) :

> 88 बालिकाओं के लिए केवल दो शौचालय थे जो स्नानघर से सटे थे। दरवाजे टूटे हुए थे और निजता के लिए उन पर टाट बांधी हुई थी। कोई सफाई कार्मिक नहीं था और शौचालयों की कभी सफाई नहीं की जाती थी। स्नानघर और दो स्नानघरों की बीच की जगह का उपयोग मूत्रालय के रूप में होता था... कपड़े और बर्तन धोने के लिए बालिकाएं खुली जगह का उपयोग करती थीं और क्योंकि पानी निकासी की व्यवस्था नहीं थी, गंदा पानी वहां जमा हो जाता था... रसोई पकाने के लिए खुले में जुगाड़ बैठाया गया था... पानी की सख्त कमी के चलते पानी खरीदना पड़ता था, फलस्वरूप बालिकाएं भरी गर्मियों में भी सप्ताह में केवल दो बार नहा पाती थीं।

एक अन्य कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय के प्रतिवेदन में बताया गया (सक्सेना व अन्य 2009 : 154) :

> बिजली नहीं थी। केवल चार स्नानघर और शौचालय थे पर उनमें नल नहीं थे। पलंग और गद्दे नहीं थे और बालिकाओं को बरसात के समय भी टपकती छत के नीचे फर्श पर सोना पड़ता था। खेल के मैदान में पानी जमा था जहां बिच्छू पाए गए। एक बच्ची को बिच्छू ने काटा और वॉर्डन ने झाड़-फूंक के लिए ओझा को बुलाया।

रोचक तथ्य यह है कि सरकारी दिशा-निर्देशों के आधार पर सातों कस्तूरबा विद्यालयों के लिए बेहतर भवनों का निर्माण करवाया गया था। परन्तु सार्वजनिक निर्माण विभाग तथा शिक्षा विभाग के आपसी झगड़े के कारण वे हस्तान्तरित नहीं किए गए। इस बीच इनमें से कुछ भवन इतने टूट-फूट चुके हैं कि उनकी मरम्मत तक संभव नहीं है।

इसके विपरीत राजस्थान के दोनों ही कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की आधारभूत संरचना उम्दा थी। उनके सुन्दर परिसर थे और आवासीय भवन, कक्षाएं, पुस्तकालय, रसोई घर, भोजन कक्ष, वॉर्डन तथा अन्य कार्मिकों के आवास आदि पृथक-पृथक थे। हालांकि इस सबसे शिक्षण की गुणवत्ता सुनिश्चित नहीं की जा सकी थी। चयन प्रक्रिया में गंभीर समस्याएं थीं। इस मुद्दे तथा अन्य संबंधित मुद्दों पर आलेख के अगले भाग में चर्चा की गई है।

शिक्षकों तथा अन्य कार्मिकों के वेतन

बावजूद कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के प्रशंसनीय उद्देश्य के जो ''समाज के वंचित समूहों की बालिकाओं की शिक्षा तक पहुंच व उसकी गुणवत्ता को सुनिश्चित करना'' है (सर्व शिक्षा अभियान 2008ए : 1), राष्ट्रीय मूल्यांकन प्रतिवेदनों (सर्व शिक्षा अभियान, 2007, 2008 बी), सक्सेना व अन्य (2009) तथा सक्सेना (2011), से स्पष्ट है कि सभी राज्यों में कस्तूरबा विद्यालयों के शिक्षकों तथा अन्य कार्मिकों को उनकी सेवाओं के लिए बेहद कम वेतन दिया जाता है। इतना कम कि इससे न्यूनतम मजदूरी नियम तक का उल्लंघन होता है। साथ ही यह स्वाल्प वेतन/मानदेय भी समय पर नहीं दिया जाता है जैसा कि राष्ट्रीय मूल्यांकन रिपोर्ट तथा मध्य प्रदेश के अध्ययन से स्पष्ट है। कुछ कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों में शिक्षकों और अन्य कार्मिकों को कई महीनों तक का भुगतान नहीं हुआ था।

उपरोक्त सभी दस्तावेज, कुमार व गुप्ता (2008) और पंद्रहवां

संयुक्त समीक्षा मिशन (जेआरएम) प्रतिवेदन 2012, शिक्षकों के स्वाल्प वेतनों को लेकर गंभीर सरोकार व्यक्त करते हैं (सर्व शिक्षा अभियान 2012)। फिर भी जो बात जिज्ञासा जगाती है वह यह है कि कस्तूरबा विद्यालयों के शिक्षकों के मसले पर विभिन्न राज्यों में बदलती शिक्षक नियुक्ति नीतियों के संदर्भ में कभी चर्चा नहीं की गई है। सच तो यह है कि विगत दो दशकों में नव-उदारवादी परिस्थितियों के चलते, भारत के कई राज्य व्यापक स्तर पर स्थाई पदों के लिए भी अनुबंधित शिक्षकों को ही ले रहे हैं।

विश्व बैंक द्वारा वर्णित परिस्थितियों के व्यापक संदर्भ में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के शिक्षकों के दर्जे को स्थित नहीं किया गया है (वैलमॉन्ड 2002); न ही निजीकरण के बढ़ते दबाव और शिक्षकों पर आरोप थोपने की वृत्ति और उनके संभावित विरोध के भय से उनके संघों को तोड़ने के प्रयासों के संदर्भ में इस समस्या को रखा गया है (आयर्स तथा आयर्स 2011); और साथ ही संदर्भित अंतर्राष्ट्रीय विमर्श को अनदेखा किया गया है (ब्राउन व अन्य; 1997; विहटि 1997)। इस सबसे शिक्षक के पेशे को भारी नुकसान पहुंचा है।

हाल में छत्तीसगढ़ में अनुबंधित शिक्षकों ने व्यापक स्तर पर विरोध किया और उन पर लाठीचार्ज हुआ (इस घटना को ईटीवी छत्तीसगढ़, चैनल 5 ने 5 नवंबर 2011 को पेश किया था)। इसी प्रकार पंजाब में भी अनुबंधित शिक्षकों ने विरोध जताया (जिसे 5 दिसंबर, 2011 को एनडीटीवी ने पेश किया)[2]। ये घटनाएं विभिन्न राज्यों में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के शिक्षकों की सेवा परिस्थितियों की वास्तविकता को रेखांकित करती हैं। विगत दो दशकों में इस क्षेत्र में जो उखाड़-पछाड़ होती रही है उसके पर्याप्त सबूत सामने आते रहे हैं। परन्तु उन पर बिरले ही उतना ध्यान दिया जाता है, जितना असल में दिया जाना चाहिए (सक्सेना व महेंद्रू, 2004)।

इस नीति के अनुरूप कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की वॉर्डन, जो चौबीसों घंटे काम पर तैनात रहती हैं और जिनका पद माध्यमिक शाला के प्राचार्य के समकक्ष है, वे अनुबंध के तहत मात्र रु. 4000 या रु. 5000 प्रतिमाह पर गुजारा चला रही हैं। राजस्थान के दोनों ही कस्तूरबा विद्यालयों के वॉर्डनों को इससे कहीं अधिक वेतन रु. 9000 प्रतिमाह दिया जा रहा था, पर यह राशि भी नियमित वेतन से कहीं कम थी। इन दोनों ही वॉर्डनों का कहना था कि उनके अनुबंध जारी रहें यह जरूरी नहीं है और उन्हें जल्दी ही जाना पड़ सकता है। यह तब जबकि उन्होंने अपने परिवारों की उपेक्षा कर, मेहनत से इन संस्थाओं को स्थापित किया है। वे पूछ रही थीं कि अगर नौकरी सुरक्षित न हो और उसमें निरंतरता सुनिश्चित न हो तो संस्थाओं को स्थापित करने में इतनी ऊर्जा का निवेश करने का क्या औचित्य है?

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों में वॉर्डन ही सबसे अधिक वेतन पाती हैं। रसोइयों और चौकीदारों को मात्र 1500 से 2500 रु. तक प्रतिमाह दिया जाता है। वंचित समूहों की बालिकों को अवसर उपलब्ध करवाने के नाम पर इन पेशेवर लोगों को निकृष्टतम असमानता का सामना करना पड़ रहा है।

शिक्षा की गुणवत्ता

पर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता कि कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय दरअसल गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध करवा रहे हैं। नीति के स्तर भी अकादमिक पक्ष पर बल की कमी इस तथ्य से ही जाहिर हो जाती है कि शिक्षकों के पेशेवर विकास को प्राथमिकता कम या बिलकुल नहीं दी गई है। उनके समक्ष जो विविध अकादमिक चुनौतियां हैं उनसे कैसे निपटा जाए इसमें उन्हें कोई मदद नहीं दी जाती। सबसे भारी चुनौती तो यही है कि जिन बालिकाओं ने कुछ साल पहले स्कूल छोड़ दिया था उन्हें 'ब्रिज कोर्स' की मदद से छठी कक्षा के स्तर तक लाना। कई बार तो जो लड़कियां कस्तूरबा विद्यालयों में आती हैं वे बुनियादी साक्षरता कौशल तक को भूल चुकी होती हैं जैसा कि राष्ट्रीय मूल्यांकन रिपोर्ट से स्पष्ट होता है।

ये प्रतिवेदन तथा अन्य दस्तावेज, जिन्हें देखा गया, पाठ्यचर्या, पुस्तकों तथा कक्षाओं में अपनाई जाने वाली परंपरागत शिक्षण विधियों के विषय में गंभीर सरोकार जताते हैं। राजस्थान के कस्तूरबा विद्यालयों में उम्दा आधारभूत संरचनाएं तथा समर्पित शिक्षक व वॉर्डन भी बेहतर शिक्षण सुनिश्चित नहीं कर सके हैं। राजस्थान के दोनों कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के कक्षा अवलोकनों ने यह साफ दर्शाया कि शिक्षकों में अकादमिक कुशलता का अभाव है। वे आठवीं कक्षा के सामाजिक विज्ञान, विज्ञान तथा गणित के विषय पढ़ाने में अक्षम थे। जो बालिकाएं बुनियादी साक्षरता कौशल तक भूल चुकी हों, उन्हें कैसे पढ़ाया जाए इसको लेकर भी वे बिल्कुल अस्पष्ट थीं। ये प्रारंभिक अवलोकन साफ-साफ रेखांकित करते हैं कि कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों में सिखाने और सीखने की प्रक्रियाओं की विधिवत समीक्षा बेहद जरूरी है।

नव-उदारवादी संदर्भ, पितृसत्ता तथा अलगाव

इस योजना ने ऐसे प्रयासों पर भी एक बहस को जन्म दिया है जो अधीनस्थ समूहों की बालिकाओं पर सरकारी निगरानी के समान

हैं। बालिकाओं के नामांकन और उनके स्कूली शिक्षण पर बढ़े हुए ध्यान का नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों तथा भूमि व आजीविका संबंधी मुद्दों पर उनके प्रभाव के बीच के संबंधों पर जो सवाल उठाए जाने चाहिएं, उस पर चुप्पी है। इन बालिकाओं के समुदाय जिस 'दमनकारी सामाजिक तथा आर्थिक अनुक्रम में स्थित हैं' (बालगोपालन 2010 : 297), इस पर भी चुप्पी ही है। अपने समुदायों से इन बालिकाओं का कटाव, उनके निजी मूल्यों को नष्ट करने की कीमत पर उन पर मध्यवर्गीय मूल्यों को थोपना, उदार शिक्षा के बदले लिंग के अनुरूप जीवन कौशलों पर दिया जाने वाला ध्यान जैसे मुद्दों ने भी कुछ शिक्षाविदों में गंभीर सरोकार जगाए हैं। कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना पर टिप्पणी करते समय बालगोपालन (2010) इस तथ्य की भी आलोचना करती हैं कि सरकार इन बालिकाओं को उनके परिवारों तथा समुदायों की गरीबी से आसानी से पृथक किए जा सकने वाला मानती है और स्कूल न जा पाने का दोष उनके परिवारों तथा समुदायों की परंपराओं पर डाल देती है और इस प्रकार ''अपने प्रयासों की प्रगतिशील प्रकृति'' को दर्शाती है।

जाहिर है कि सरकार को इस प्रकार बचने की अनुमति नहीं दी जा सकती। फिर भी पितृसत्तात्मक मूल्यों को कायम रखने में, जो बालिकाओं की शिक्षा को बाधित करते हैं, परिवार तथा समुदाय की भूमिका को अनेदखा नहीं किया जा सकता। बालिकाओं को छात्रावास में रहना इसलिए पसंद आता है क्योंकि यह उन्हें दमनकारी पारिवारिक व सामुदायिक पितृसत्ता से बचने का मौका देता है। पर इसके साथ-साथ वे स्वयं को कटा हुआ भी महसूस करती हैं और उन्हें घर की याद भी सताती है। कई सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रतिवेदन यह दावा भी करते हैं कि शिक्षा तक पहुंच विवाह की आयु को बढ़ाती है। फिर भी बाल विवाह के न होने मात्र से ये बालिकाएं इतनी सशक्त नहीं हो जातीं कि वे असमानता की ताकत और उसके ढांचे को चुनौती दे सकें। साथ ही छात्रावासों में ये बालिकाएं जिन नई ''पितृसत्ताओं'' का सामना करती हैं उनके बारे में खास जानकारी भी नहीं है। संभावना यही है कि एक प्रकार की सत्ता की जगह सत्ता के नए स्वरूप उठ खड़े होते हों। अतः अलगाव, एकाकीपन, आजादी और पितृसत्तात्मक नियंत्रण के नए स्वरूप छात्रावासों में रहने वाली बालिकाओं की जटिल वास्तविकता को रचते हैं। लैंगिक असमानता कायम रखने के लिए सत्ता के जो ढांचे जिम्मेदार हैं क्या उन्हें चुनौती देने या कम से कम पहचानने तक में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की संस्थागत प्रक्रियाएं सक्षम हैं? यही वह यक्ष प्रश्न है जो आलोचनात्मक छानबीन की मांग करता है।

चयन के मानदण्ड या उनका अभाव

इस कस्तूरबा विद्यालय की आवासीय तथा अन्य सुविधाओं को देख (जिसमें शिक्षण की गुणवत्ता भी शामिल हो, यह कतई जरूरी नहीं) कई बालिकाओं के माता-पिता ने कहा कि वे भी अपनी बेटियों को यहां भेजना चाहेंगे। पर उन्हें यह पता नहीं था कि विद्यालय में किसका और कैसे चयन होता है (सक्सेना 2011)।[3]

मध्य प्रदेश के कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के छात्रावासों में नामांकित 9,245 बालिकाओं में केवल 57 मुस्लिम समुदाय की थीं। यह स्थिति इस समुदाय के प्रति पूर्वाग्रह के कारण है (यूनिसेफ 2010 : 58)।

राष्ट्रीय मूल्यांकन प्रतिवेदन भी चयन प्रक्रिया में नजर आने वाले पूर्वाग्रह के विषय में गंभीर सरोकार जताते हैं। प्रतिवेदन यह दर्ज करते हैं कि जिन जिलों में जमीनी सूचनाएं एकत्रित की गईं, उनमें से अधिकांश में स्कूल न जाने वाली लड़कियों तक पहुंचने के कोई उपाय नजर नहीं आए। साथ ही दलित, अल्पसंख्यक व गरीबी रेखा से नीचे जी रहे परिवारों की बालिकाओं को शामिल करने का विशेष प्रयास भी नहीं दिखा। कई कस्तूरबा विद्यालयों में बालिकाएं या तो उसी गांव की थीं या आस-पास के गांवों की। कई ने तो स्कूल छोड़ा भी नहीं था, बल्कि नियमित छात्राएं थीं।

सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह था कि कई कस्तूरबा विद्यालयों में अल्पसंख्यक व गरीबी रेखा से नीचे जीने वाली छात्राओं की संख्या बेहद कम थी, कुछ अनुसूचित जाति/जनजाति की छात्राएं थीं। पर सामान्य आबादी में उनके प्रतिशत के हिसाब से इन श्रेणियों की छात्राओं की संख्या भी बेहद कम थी। उदाहरण के लिए, एक प्रखण्ड में जहां कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय को एक ईसाई गैर-सरकारी संस्था चला रही थी, वहां केवल ईसाई छात्राएं ही थीं। इसी प्रकार राजस्थान के दोनों कस्तूरबा विद्यालयों में केवल अनुसूचित जनजाति की ही छात्राएं थीं। जबकि दोनों ही प्रखण्डों में अनुसूचित जाति तथा अल्पसंख्यकों की आबादी भी थी। दोनों विद्यालयों की वॉर्डनों ने चयन प्रक्रिया संबंधी प्रश्नों पर टालमटोल की और काफी खोदने पर कहा कि बालिकाओं का चयन जागृति अभियानों के माध्यम से होता है। यह पूछने पर कि ये अभियान कैसे और किसके द्वारा आयोजित किए जाते हैं और दूरस्थ आदिवासी इलाकों के लोगों को इनकी सूचना किस तरह मिलती है, वॉर्डनों ने कोई सीधा जवाब नहीं दिया। फिर भी उन्होंने यह संकेत दिया कि उनको किसी प्रकार की स्वायत्तता नहीं है और प्रखण्ड शिक्षा अधिकारी ही बालिकाओं के चयन के समेत प्रत्येक निर्णय को पूरी

तरह नियंत्रित करते हैं। इन दोनों ही कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों में भी चंद अपवादों के अलावा शेष सभी छात्राएं आस-पास के गांवों की ही थीं। जब नीति ही ऐसी हो जिसमें हर प्रखण्ड की केवल कुछ बालिकाओं को सुविधा देने, उनके लिए ही नियोजन करने का प्रावधान हो और ठीक वैसी ही परिस्थितियों में रहने वाली बहुसंख्यक बालिकाओं का समावेशन ही न हो, तो चयन प्रक्रिया भी पारदर्शी नहीं हो सकती।

गैर-सरकारी संस्था बनाम सरकार

संयुक्त समीक्षा मिशन 2012 (सर्व शिक्षा अभियान 2012 : ए 119) के अनुसार देशभर में तकरीबन 3,435 कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय चल रहे हैं और उनमें कुल नामांकन 3.18 लाख है। संयुक्त समीक्षा मिशन 2012 का प्रतिवेदन कुछ राज्यों में केयर तथा महिला समाख्या द्वारा कस्तूरबा विद्यालयों के संचालन प्रयासों की प्रशंसा भी करता है। यूनिसेफ (2010) प्रतिवेदन मध्य प्रदेश में यादृच्छिक रूप से चुने गए पांच कस्तूरबा विद्यालयों की दयनीय रिहायशी स्थितियों की चर्चा करता है। ये सभी कस्तूरबा विद्यालय मध्य प्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा सर्व शिक्षा अभियान के तहत चलाए जा रहे हैं। सक्सेना (2011) अपने प्रतिवेदन में राजस्थान में गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा संचालित दो प्रखण्डों के कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की बेहतरीन भौतिक संरचनाओं व अन्य सुविधाओं की चर्चा करती हैं। राष्ट्रीय मूल्यांकन रिपोर्ट भी यह संकेत देती है कि जो कस्तूरबा विद्यालय गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा संचालित हैं, उनकी आधारभूत संरचनाएं बेहतर हैं।

संभव है कि उपरोक्त प्रमाण इस सामान्यीकरण तक पहुंचने के लिए पर्याप्त न हो कि गैर-सरकारी संगठनों द्वारा संचालित कस्तूरबा विद्यालयों का प्रबंधन बेहतर है, फिर भी इसके पर्याप्त संकेत तो मिलते ही हैं। क्या इसका अर्थ यह है कि सरकारी महकमा ऐसी संस्थाओं के संचालन में अक्षम है? कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय के दिशा-निर्देशों (सर्व शिक्षा अभियान 2008 ए : 2) के अनुसार कॉर्पोरेट समूह भी इन आवासीय शालाओं को गोद ले सकते हैं। इसके लिए पृथक शिक्षा-निर्देश जारी किए जाने हैं। क्योंकि ऐसी पहलों के सरकारी स्कूली व्यवस्था पर गंभीर निहितार्थ होंगे, इस मुद्दे पर व्यवस्थित परिचर्चा भी जरूरी है। पर यह विषय मौजूदा आलेख के दायरे से बाहर है।

2. कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय तथा असमानताएं

इस भाग में दो मुद्दों को देखा गया है। समानता के एजेण्डा पर कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना का संभावित निहितार्थ पहला मुद्दा है जिसकी चर्चा स्कूली शिक्षा तथा सामाजिक रूपान्तरण के द्वंद्वात्मक संबंधों के नजरिए से की गई है। दूसरा मुद्दा है विगत पांच दशकों के शिक्षा के इतिहास की रूपरेखा तथा इस दौरान नीतियों में आए विचलनों के तहत, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय जैसी योजना के आविर्भाव को जांचना। इस संदर्भ में दिशा-निर्देश कस्तूरबा विद्यालयों के जिन लक्ष्यों को परिलक्षित करते हैं, उनका विश्लेषण भी किया गया है।

शिक्षा तथा सामाजिक रूपान्तरण

शिक्षा तक पहुंच की समानता - विस्तार, समान अवसर और सकारात्मक भेदभाव के माध्यम से संभव है - तथा शिक्षा के माध्यम से सामाजिक समानता हासिल करने की संभावना, बीसवीं शताब्दी के मध्य से ही समाजशास्त्रियों के लिए महत्त्वपूर्ण मुद्दे रहे हैं (कैराबेल तथा हैल्सी, 1977; शुक्ल तथा कुमार, 1985; वेलास्कर 2010)। इस संदर्भ में एक बुनियादी मुद्दे पर सघन वाद-विवाद भी होता रहा है। बुनियादी मुद्दा यह है कि क्या शिक्षा दरअसल ऐसा कारगर औजार है जो असमानताओं की संरचनाओं को चुनौती दे सके, उन्हें बदल सके या फिर शिक्षा केवल प्रमुख विचारधाराओं तथा सामाजिक व आर्थिक असमानताओं को पुनरुत्पादित और सुदृढ़ करती है। हैल्सी (1985 : 82) के अनुसार ''समान लोगों के समाज को आर्थिक तथा सामाजिक सुधार द्वारा रचना पड़ता है और शिक्षा की भूमिका मुख्यतः तब उस समाज को बनाए रखने की होनी चाहिए, जब एक बार उसे हासिल कर लिया जाए।''

परन्तु क्या इसका अर्थ यह है कि आधुनिक युग में समानता के संघर्षों में स्कूलों की उपेक्षा की जा सकती है? कैराबेल तथा हैल्सी (1977) में 1972 की क्रिस्टोफर जेंक्स की *असमानता* (इनइक्वैलिटी) रिपोर्ट पर चर्चा मिलती है। वे जेंक्स से इस बात पर सहमत थे कि आर्थिक क्षेत्र ही इस संघर्ष के अखाड़े की कुंजी है। पर उन्होंने साथ ही इस बात पर भी बल दिया कि :

> ''स्कूल 'निवेशों' (इनपुट) को 'उत्पादों' (आउटपुट) में नहीं बदलते, बल्कि उनसे गुजरने वालों के व्यक्तित्वों को आकार देते हैं; अतः यह रिपोर्ट स्कूलों को हाशिए पर धकेलने के कारण 'द्वंद्वात्मक होने की बजाय मशीनी है' (1977 : 26)।

उपरोक्त रिपोर्ट पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने आगे जोड़ा :

> ''इस रिपोर्ट ने शानदार तरीके से उस खास अमरीकी मिथक को नष्ट किया कि स्कूली सुधार अधिक बुनियादी

> सामाजिक बदलाव का स्थान ले सकता है। परन्तु दुर्भाग्य से संभव यह है कि असमानता रिपोर्ट ने उसके स्थान पर एक दूसरे ही, पर उतने ही विनाशकारी मिथक को स्थापित कर दिया है : कि सामाजिक समानता की एक कारगर रणनीति स्कूलों की उपेक्षा कर सकती है'' (तत्रैव)।

विवेचनात्मक तथा संघर्ष सिद्धान्त (कॉन्फ्लिक्ट थ्योरी) जो शिक्षा की महज पुनरुत्पादन की भूमिका को चुनौती देते हैं, उन्होंने शिक्षा तथा सामाजिक बदलाव के जटिल परन्तु महत्त्वपूर्ण संबंध पर और अधिक बल दिया है।

फिर भी शिक्षा के माध्यम से सामाजिक बदलाव की जो भी संभावना है वह तब पूरी तरह से नष्ट हो सकती है अगर एक समान शैक्षिक अवसर और उसके साथ किए जाने वाले पूरक उपायों को नीतियों में त्याग दिया जाए। ऐसी स्थिति में सबके लिए गुणवत्ता की सार्विक मांग का स्थान क्रमशः विशेष स्कूलों में दाखिले की स्पर्धा ले सकती है। इस प्रकार कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय एक ओर वंचित और अधीनस्थ समूहों के बच्चों को कस्तूरबा विद्यालय वाले तथा गैर-कस्तूरबा विद्यालय वाले समूहों में बांट देते हैं। पर साथ ही यह योजना एक दूसरे स्तर पर भी अपारदर्शिता को जोड़ती है। यह अपारदर्शिता चयन प्रक्रिया को निर्मूल करने से आती है, जिसकी चर्चा हम आलेख के क्रियान्वयन भाग में कर चुके हैं। सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया करवाने के सरोकार को संबोधित करने के बदले अगर हम स्पर्धा तथा विभाजन को घुसाते हैं तो शिक्षा और न्याय के लिए संघर्ष के बीच की कड़ी को गंभीर खतरा पहुंच सकता है।

समान शैक्षिक अवसर का विस्थापन

स्वतंत्र भारत के संविधान की जड़ें उदारवादी विचारधारा में हैं और हमारा संविधान स्वतंत्रता, न्याय तथा समानता के मूल्यों के प्रति कटिबद्ध है। शिक्षा के संदर्भ में इसका अर्थ था सबके लिए समान शैक्षिक अवसर तथा उन समुदायों के लिए पूरक उपाय जो ऐतिहासिक रूप से वंचित तथा शोषित रहे हैं। जैसा प्रारंभ में ही कहा गया था, ऐसे सरकारी उपक्रम का आधार इन समुदायों द्वारा पीढ़ियों से झेले गए अन्यायों और असमानताओं में था, जिसके कारण वे शिक्षा व्यवस्था में अनेकानेक असमानताओं व प्रतिकूलताओं के साथ दाखिल होते हैं।

संविधान के निर्देशों के बावजूद 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए शिक्षा तथा कमजोर तबकों के बच्चों की विशेष देखरेख तब तक उपेक्षित ही रही, जब तक कि 1964 में शिक्षा आयोग का गठन न कर दिया गया। शिक्षा के समान अवसर को हासिल करने के लिए दो-मुखी रणनीति सुझाई गई : एक तो सरकार द्वारा संचालित निम्न तथा उच्च प्राथमिक शालाओं की संख्या में भारी विस्तार तथा दूसरे एक समान स्कूली शिक्षण व्यवस्था की स्थापना।

रोचक तथ्य यह है कि हालांकि प्रकट रूप से इसका समर्थन किया गया, परन्तु शिक्षा आयोग के इस सपने को दरअसल साकार करने के प्रयासों का कड़ा विरोध हुआ। खासतौर से उच्च जाति तथा वर्ग के नेतृत्व द्वारा। समान शैक्षिक अवसर का एकमात्र स्वरूप जो उन्हें स्वीकार्य था, वह था सरकार द्वारा संचालित निःशुल्क आरंभिक शिक्षा तथा उसका विस्तार। इस प्रकार शिक्षा की द्विस्तरीय व्यवस्था और पुख्ता हुई, जिसमें एक स्तर पर अधीनस्थ लोगों के लिए निःशुल्क सरकारी शालाएं थीं और ताकतवर तबके के लिए कुलीनवादी निजी शिक्षा व्यवस्था। क्योंकि आरंभिक शिक्षा के लिए पर्याप्त संसाधन आवंटित नहीं किए गए, संख्या तथा गुणवत्ता की दृष्टि से इसका विस्तार अपर्याप्त रहा। भारत जैसे विशाल और असमान रूप से विकासशील देश में सीमित तथा लगातार घटते जाते बजट के चलते, सरकार द्वारा संचालित निःशुल्क स्कूली शिक्षण व्यवस्था ने काफी अलग-अलग रास्ते पकड़े। इसका नतीजा था असमानता, असंतुलन तथा अपर्याप्त विस्तार (वेलास्कर, 2010)।

शिक्षा के क्षेत्र में उदारीकरण की शुरुआत भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलने के संदर्भ में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के साथ हुई। इस नीति ने बाहरी निर्भरता की पृष्ठभूमि तैयार की। इसका रुझान निजीकरण, विस्तार के लिए अपर्याप्त आवंटन तथा ग्रामीण कुलीनों के लिए नवोदय विद्यालयों की स्थापना की दिशा में था। नतीजतन सरकारी शिक्षा व्यवस्था का स्तरीकरण और भी मजबूत हुआ। वह पहले से अधिक असमान तथा बहुस्तरीय बनी। आदिवासियों, दलितों तथा खानाबदोश आबादी तथा ग्रामीण बच्चों के लिए असमान तथा समान्तर व्यवस्था बनाई गई। इसमें वैकल्पिक शालाएं तथा पहले ही काफी बदनाम हो चुके अनौपचारिक शिक्षा केंद्रों की स्थापना को विस्तार की रणनीति में शामिल किया गया। इससे असमानता और पैनी हुई। वेलास्कर का तर्क है कि 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति, दरअसल समान शैक्षिक अवसर की उस नीति के परित्याग की शुरुआत थी, जो शिक्षा के माध्यम से समता व न्याय हासिल करने की मुख्य रणनीति थी। साथ ही ग्रामीण वंचित बच्चों की प्रतिभा को उभारने के लिए आदर्श जिला स्तरीय स्कूलों जैसी योजनाओं की स्थापना का अर्थ यह भी था कि ''सबके लिए गुणवत्ता'' को त्याग ''कुछ के लिए गुणवत्ता'' को स्वीकारना। यह ग्रामीण अभिजात वर्ग की मांगों के अनुरूप था (कुमार, 1985)।

1990 के दशक में कल्याणकारी राज्य के विचार के न्यूनीकरण तथा बाजार पर ध्यान केंद्रित करने के साथ भारत सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय दानदाता संस्थाओं के साथ सहयोग किया, जिन्होंने शिक्षा की राजनीतिक अर्थव्यवस्था को ही बदल डाला। सरकार द्वारा लागू किए जा रहे शैक्षिक सुधार वैश्विक खिलाड़ियों द्वारा तय की गई शर्तों का अनुपालन करने लगे। इस दशक में विश्व बैंक द्वारा अनुदानित आरंभिक शिक्षा कार्यक्रम प्रारंभ हुआ जो जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) के नाम से था। इससे समान अवसर का एजेण्डा अपने उद्देश्यों की दृष्टि से और भी हाशिए पर धकेल दिया गया। भारत सरकार के सावधानी से लिखे गए एक प्रकाशन में डीपीईपी के दिशा-निर्देश साफ-साफ कहते हैं कि यह कार्यक्रम ''राष्ट्रीय अनुभव'' के आधार पर ''1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का कार्यान्वयन है''। यह कार्यक्रम एक समयबद्ध (पांच वर्षीय) विशिष्ट हस्तक्षेप कार्यक्रम था। इसका लक्ष्य था स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की दर को कम करना तथा उपलब्धि व नामांकन में जो लैंगिक असमानता है उसे दूर करना। परन्तु यह कार्यक्रम समान शैक्षिक अवसर रचने के प्रति कटिबद्ध नहीं था, न ही इसका लक्ष्य शिक्षा को सार्विक बनाना था (कुमार तथा अन्य 2001)।

डीपीईपी के बाद असमान स्कूली शिक्षण व्यवस्था और भी स्तरीकृत बनी है। स्कूलों के तमाम और स्तर रचे गए हैं जिसमें शिक्षा गारंटी स्कूलों, बजट स्कूलों तथा गुणवत्ता के नाम कुछ लोगों के लिए जिला स्तरीय आदर्श विद्यालयों व कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की स्थापना की गई है। यह सभी बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण सरकारी शालाओं के विस्तार के स्थान पर किया गया है। इसके अलावा विकल्प उपलब्ध करवाने के नाम पर नीतिगत स्तर पर सार्वजनिक-निजी भागीदारी तथा वाउचर व्यवस्था के माध्यम से भी निजीकरण को प्रोत्साहित किया जा रहा है (सक्सेना, 2010)। इन घटनाओं पर टिप्पणी करते हुए वेलास्कर (2010) लिखती हैं कि घटिया स्कूलों की संख्या में बढ़ोतरी से शिक्षा तक पहुंच संभवतः बढ़ी होगी परन्तु वंचित लोगों के लिए सार्थक रूप से सीखने के अनुभव कम हुए हैं।

यह स्पष्ट है कि विगत छह दशकों में समान शैक्षिक अवसर का सिद्धान्त तथा हाशिए पर जी रहे समुदायों के लिए पूरक उपायों का स्थान एक बहुस्तरीय, असमान स्कूली व्यवस्था ने ले लिया है। संसाधनहीन सरकारी स्कूलों की संख्या बढ़ी है और साथ ही ऐसी विशेष योजनाएं लागू की गई हैं जो अधिकतर बच्चों के असमावेशन पर आधारित हैं। इस सबसे संविधान में समानता तथा न्याय के प्रति जो कटिबद्धता थी उसका स्पष्ट उच्छेदन हुआ है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय नीतिगत स्तर पर हुए इस उच्छेदन को ढांपने का उपाय है जो जाहिर तौर पर बालिकाओं की शिक्षा और गुणवत्ता के शब्दाडम्बर के प्रति सरोकार जताता है।

अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह योजना इसलिए भी एक मृग-मरीचिका है क्योंकि कुछ लोगों पर दिए जा रहे विशेष ध्यान को यह गुणवत्ता की सामान्य समस्या तथा सभी बालिकाओं की भागीदारी संबंधी वक्तव्यों से ढांपता है। और तो और ये प्रयास भी न्यूनतम हैं। योजना का क्रियान्वयन साफ दर्शाता है कि ''शब्द'' और ''कर्म'' में जमीन-आसमान का अंतर है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय के दिशा-निर्देश

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय के दिशा-निर्देश दरअसल दो समस्याओं की स्वीकारोक्ति हैं। अव्वल तो यह कि ऐसे कई इलाके हैं जहां बड़ी संख्या में बालिकाएं स्कूल से बाहर हैं : ''आरंभिक स्तर पर; खासतौर से उच्च प्राथमिक स्तरों पर, लड़कों की तुलना में बालिकाओं के नामांकन में काफी अंतर है'' (सर्व शिक्षा अभियान 2008 ए : 1)। दूसरे, ''ग्रामीण तथा वंचित समुदायों में जेन्डर विसंगतियां अभी तक कायम हैं'' (सर्व शिक्षा अभियान 2008 ए : 1)। दिशा-निर्देश यह भी रेखांकित करते हैं कि कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों का उद्देश्य 'आरंभिक स्तर पर आवासीय शालाएं तथा छात्रावास सुविधाओं की स्थापना द्वारा समाज के वंचित समूहों की बालिकाओं के लिए शिक्षा की पहुंच तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना है'।

यह उद्देश्य शैक्षिक रूप से पिछड़े प्रखण्डों की सभी बालिकाओं के लिए चिंता व्यक्त करता प्रतीत होता है, न कि चुनिंदा बालिकाओं के लिए। हालांकि कुछ चयनित प्रखण्डों में प्रति प्रखण्ड केवल 50 से 100 बालिकाओं के लिए कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय खोलने की नीति इस उम्मीद को तोड़ती है। स्कूल से बाहर रह गई हजारों बालिकाओं में से कुछ चुनिंदा बालिकाओं को लाभान्वित करने की योजना के पीछे कोई भी विश्वसनीय आधार या तर्क नजर नहीं आता। उदाहरण के लिए, राजस्थान के झाड़ोल प्रखण्ड के प्रखण्ड शिक्षा अधिकारी के प्रतिवेदन के अनुसार वर्ष 2009-10 में प्रारंभिक स्तर पर स्कूल छोड़ देने वाली बालिकाओं की संख्या 6,336 थी। इस प्रखण्ड में केवल एक बेहद साधन संपन्न कस्तूरबा विद्यालय है (सक्सेना, 2011)।

इसी प्रकार विस्तृत राज्य-स्तरीय मूल्यांकन प्रतिवेदन, जिन पर राष्ट्रीय मूल्यांकन प्रतिवेदन (2007, 2008) आधारित है, यह बताता है कि पश्चिम बंगाल के बांकुड़ा जिले में 13 प्रखण्ड हैं। अगर वहां प्रत्येक प्रखण्ड में भी मॉडल 1 प्रकार का कस्तूरबा

विद्यालय खोला गया हो तो भी वहां 1300 से अधिक बालिकाओं का नामांकन नहीं हो सकता। इस जिले में वर्ष 2006-07 में स्कूल न जाने वाली बालिकाओं की संख्या 19,693 थी। पुरूलिया जिले में, जिसमें 20 प्रखण्ड हैं, स्कूल न जाने वाली बालिकाओं की संख्या 39711 थी। आसाम के आठ जिलों के शैक्षिक रूप से पिछड़े 15 प्रखण्डों में 2006-07 में स्कूल छोड़ चुकी बालिकाओं की संख्या 11,162 थी। आसाम ने मॉडल 2 प्रकार के कस्तूरबा विद्यालय चुने थे। अतः वहां श्रेष्ठतम परिस्थितियों में भी कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों में 750 से अधिक बालिकाएं हो ही नहीं सकती थीं।

अतः स्कूल न जाने वाली बालिकाओं की इस भारी संख्या और अति-सीमित स्थानों के चलते कस्तूरबा गांधी विद्यालय की चयन प्रक्रिया निश्चित रूप से अपारदर्शी ही होगी जिससे समानता हासिल करने की दिशा में और भी विकार आ जुड़ेंगे। वास्तविकता में, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना सरकारी व्यवस्था को अधिक बराबरी वाली और जवाबदेह व्यवस्था बनाने की योजना नहीं है। कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना जिन समुदायों को लाभान्वित करने का दावा करती है, उनकी ही अधिकांश बालिकाओं की अवहेलना कर केवल कुछ के लिए बनाई गई है। क्या असमावेशन और समानता साथ-साथ चल सकते हैं? क्या यह नीति स्वयं ही वंचितों के बीच गैर-बराबरी को अधिक पैना नहीं बनाती? क्या ऐसी योजनाएं शिक्षा में बराबरी की बहस को सिर के बल औंधा खड़ा कर इन समुदायों में गैर-बराबरी, स्पर्धा और असमावेशन को प्रोत्साहित नहीं करतीं?

नवोदय विद्यालयों के विपरीत यहां लाभान्वित करने का आधार ''योग्यता'' भी नहीं है, जो स्वयं भी एक समस्यात्मक मानदण्ड है। अतः संभव यही है कि यहां लाभ पहुंचाने का आधार प्रश्रय है। यह योजना स्कूली शिक्षा से बाहर कुल बालिकाओं में से स्वाल्प अंश को छात्रावास, साफ-सुथरे वातावरण और ''गुणवत्तापूर्ण शिक्षा'' तक पहुंच उपलब्ध करवाती है। इस योजना की दृश्यता, उसकी मोहकता अधिकांश बालिकाओं को अदृश्य बना समान शैक्षिक अवसरों के मुद्दे को धुंधला बना डालती है। वह समय आ चुका है जब शिक्षाविद ऐसी तमाम योजनाओं के मोहक रूप के परे भी देखें, जो वंचितों के स्वाल्प आबादी को लाभान्वित करती हों और विस्तार की तथा सभी सरकारी स्कूलों में बेहतर सुविधाओं और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की मांग करें।

जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है कि शिक्षा तथा सामाजिक न्याय अथवा सार्थक समता के बीच एक और द्वंद्वात्मक संबंध होता है। अतः यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि अपर्याप्त शैक्षणिक अवसर, समानता तथा न्याय की संभावना को किस प्रकार और भी नष्ट करते हैं।

निष्कर्ष

जब कोई नीति चुनिंदा लोगों की शिक्षा तक पहुंच तथा गुणवत्ता के सरोकारों को संबोधित करती है और अधिकांश को बहिष्कृत करती है, तो उसमें विकृतियां निश्चित रूप से आएंगी। स्कूलों की गुणवत्ता सुधारने के लिए हम चयनात्मक मानदण्डों पर निर्भर नहीं कर सकते। क्योंकि वे सामान्य परिस्थिति से ध्यान भटका देते हैं। क्या इसका मतलब यह है कि सरकार को सिद्धान्ततः ''आदर्श स्कूलों'' की स्थापना की योजना बनानी ही नहीं चाहिए? दूरगामी लक्ष्यों के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर ''हां'' और ''ना'' दोनों ही है। अगर ऐसे स्कूल किसी नवाचार के साथ प्रयोग करने के उद्देश्य से चलाए जाते हैं, ताकि उनके अनुभव के आधार पर इन नवाचारों को मुख्यधारा में शामिल किया जा सके, तो शायद हां। परन्तु अगर उद्देश्य असमावेशन के सिद्धान्त पर आधारित चुनिंदा गुणवत्तापूर्ण स्कूलों की स्थापना है, जो व्यापक यथार्थ को छितरा दें, तो उत्तर ना है।

इसके अतिरिक्त ऐसे गुणवत्तापूर्ण सरकारी स्कूल जिनमें सबके लिए माकूल मूलभूत संरचना और योग्य शिक्षक हों, की मांग के संघर्ष को अनवरत होना होगा। जबकि कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय जैसी चमकदार नीतियां/योजनाएं ध्यानकेन्द्र को धुंधला बना डालती हैं। अन्यथा यह खतरा बना रहेगा कि अधिकारों के विमर्श पर कम से कम कुछ बच्चों की बेहतर सुविधाओं तक पहुंच तो बन रही है का आख्यान हावी हो जाए। ◆

भाषान्तर : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

टिप्पणियां

1. देखें, कस्तूरबा गांधी संचालन निर्देश वर्ष 2007-08, राज्य शिक्षा केंद्र भोपाल।
2. मुख्तसर जिले में अनुबंधित शिक्षकों द्वारा अपनी नौकरी को नियमित बनाने के जुलूस के दौरान भटिण्डा जिले की शिक्षिका बरिन्दर पाल कौर को उस समय शासन कर रहे अकाली दल के एक पुरुष सरपंच ने थप्पड़ जमाया।
3. सक्सेना (2011), सितम्बर, 2011 में राजस्थान के दो कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के अध्ययन का अप्रकाशित प्रतिवेदन है। इसमें उदयपुर स्थित स्वैच्छिक संस्था सेवा मंदिर मददगार रही थी।

संदर्भः

Ayers, Bill and Rick Ayers (2011): "Education under Fire: Introduction", Monthly Review, 63(3), accessed on 11 November 2011: http://monthlyreview.org/2011/07/01/education-under-fire-introduction.

Balagopalan, Sarada (2010): "Rationalising Seclusion: A Preliminary Analysis of a Residential Schooling Scheme for Poor Girls in India", Feminist Theory, 11(3): 295-308.

Brown, Phillip, A H Halsey, Hugh Lauder and Amy Stuart Wells (1997): "The Transformation of Education and Society: An Introduction" in A H Halsey, Phillip Brown, Hugh Lauder and Amy Stuart Wells (ed.), Education: Culture, Economy, and Society (New York: Oxford University Press), 1-44.

Halsey, A H (1985): "Sociology and the Equality Debate" in Sureshchandra Shukla and Krishna Kumar (ed.), Sociological Perspectives in Education (New Delhi: Chanakya Publications), 80-101.

Halsey, A H, Hugh Lauder, Philip Brown and Amy Stuart Wells (1997): Education: Culture, Economy, and Society (New York: Oxford University Press).

Karabel, Jerome and A H Halsey (1977): Power and Ideology in Education (New York: Oxford University Press).

Kothari Commission (1966): "Report of the Education Commission 1964-66: Education and National Development", Ministry of Education, New Delhi.

Kumar, Krishna (1985): "Quality over Access: Responding to the Demand of the Elite", Economic & Political Weekly, 20(22):948-949.

Kumar, Krishna, Manisha Priyam and Sadhna Saxena (2001): "Looking behind the Smokescreen: DPEP and Primary Education in India", Economic & Political Weekly, 36(7): 560-68.

Kumar, Krishna and Latika Gupta (2008): "What Is Missing in Girls' Empowerment?", Economic & Political Weekly, 43(26-27): 19-24.

Mainardes, Jefferson and Maria Ines Marcondes (2009): "Interview Stephen J Ball: A Dialogue about Social Justice, Research and Education Policy", Educação and Sociedade, 30(106), accessed online on 8 October 2012: http://www.scielo.br/scielo.php?pid=S0101-73302009000100015&script=sci_arttext&tlng=en

National Focus Group (2007a): "Problems of Scheduled Caste and Scheduled Tribe Children", Position Paper 3.1, National Council of Educational Research and Training (NCERT), New Delhi. – (2007b): "Gender Issues in Education", Position Paper 3.2, NCERT, New Delhi.

Olssen, M, J Codd and A O'Neil (2004): Education Policy: Globalisation, Citizenship, Democracy (London: Sage Publications).

Poonacha, Veena and Meena Gopal (2004): Women and Science: An Examination of Women's Access to and Retention in Scientific Career (Mumbai: Research Centre for Women's Studies).

Saxena, Sadhna and Kamal Mahendroo (2004): "Changing Profiles of School Teachers", presented at National Seminar on Strategies and Dynamics of Change in Indian Education, jointly organised by CARE India and the Institute of Applied Manpower Research, 25-27 November, New Delhi.

Saxena, Sadhna, Ramkant Agnihotri, Budhaditya Das and Shashi Saxena (2009): "Status of Girls' Education in Madhya Pradesh", unpublished report, UNICEF, Bhopal.

Saxena, Sadhna (2010): "Para Teachers, Education Guarantee Scheme, and PPP: Road to Dismantling the Public Education System" in Manoranjan Mohanty (ed.), India Social Development Report 2010: The Land Question and the Marginalised (New Delhi: Oxford University Press), 88-100. – (2011): "Report on Field Visit to Two KGBVs in Rajasthan", Seva Mandir, Udaipur.

SSA (2007): "National Evaluation Report on Kasturba Gandhi Balika Vidyalaya", MHRD, New Delhi.

– (2008a): "Revised Guidelines for Implementation of Kasturba Gandhi Balika Vidyalayas (KGBVs)", Department of School Education and Literacy, MHRD, New Delhi, retrieved 25 October 2012: http://ssa.nic.in/girls-education/6_FCEED7DF.pdf/view

– (2008b): "National Evaluation Report on Kasturba Gandhi Balika Vidyalaya", MHRD, New Delhi.

– (2012): "Fifteenth Joint Review Mission, 16th-30th January 2012: Aide Memoire", retrieved 25 October 2012: http://ssa.nic.in/monitoring/jointreview-mission-ssa-1/joint-review-mission-ssa

Shukla, Sureshchandra and Krishna Kumar, ed.(1985): Sociological Perspective in Education: A Reader (New Delhi: Sage).

UNICEF (2010): Girls Education: A Sociological Perspective (Bhopal: UNICEF).

Velaskar, Padma (2010): "Quality and Inequality in Indian Education: Some Critical Policy Concerns", Contemporary Education Dialogue, 7(1):58-93.

Welmond, Michel (2002): "Globalisation Viewed from the Periphery: The Dynamic of Teacher Identity in the Republic of Benin", Comparative Education Review, 46(1): 37-65.

Whitty, Geoffrey (1997): "Marketisation, State and the Re-formation of the Teaching Profession" in A H Halsey, Phillip Brown, Hugh Lauder and Amy Stuart Wells (ed.), Education: Culture, Economy, and Society (New York: Oxford University Press), 299-310.